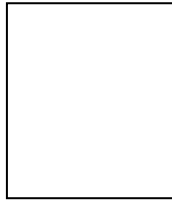
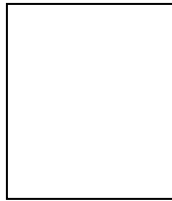


मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में दण्ड व्यवस्था का समीक्षात्मक अध्ययन

Shodh Siddhi

A Multidisciplinary & Multilingual Double Blind Peer Reviewed International Research Journal
Volume: 01 | Issue: 01 [January to March : 2025], pp. 40-44

पुष्पेन्द्र कुमार कुशवाहा
शोधार्थी (संस्कृत विभाग)



प्रो. प्रीति राठौर
विभाग प्रभारी, संस्कृत विभाग,
डी.वी.एस.पी.जी. कॉलेज, गोविन्दनगर
कानपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

शोध सारांश

प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथ केवल धर्म और आध्यात्म तक ही सीमित नहीं थे वरन् धर्म, राजनीति, न्याय, समाज और अर्थनीति सभी को संचालित करता था, इसलिए धर्मग्रंथों में राजनीति, न्याय, सामाजिक व्यवस्था, अर्थव्यवस्था आदि सभी का विस्तृत वर्णन मिलता है। स्मृति ग्रंथों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में न्याय व्यवस्था की विस्तृत व्याख्या मिलती है। इन स्मृति ग्रंथों में दण्ड व्यवस्था के अठारह पद प्राप्त होते हैं जिनमें सभी प्रकार के संभावित विवादों को स्थान दिया गया है और उनके अनुसार दंड का विधान किया है। मनुस्मृति विश्व की सबसे प्राचीन दण्ड संहिता या न्याय संहिता मानी जाती है। मनुस्मृति में दण्ड का विधान अधिक कठोर और वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित है। इसके अनुसार समाज का जो वर्ग जितना अधिक जिम्मेदार है यदि वह अपराध करता है तो उसके लिए उतना ही अधिक कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। मनुस्मृति के अनुसार एक साधारण व्यक्ति की अपेक्षा एक ब्राह्मण के लिए दंड का विधान एक हजार गुना अधिक होना चाहिए क्योंकि वह समाज का एक आदर्श व्यक्ति है। दोनों स्मृतियों में प्रमुख अपराधों- यथा चोरी, हत्या, व्यभिचार, झूठी गवाही आदि के लिए निर्धारित दण्ड एवं न्याय व्यवस्था का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द- मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, दंड व्यवस्था, धर्मशास्त्र, प्राचीन भारतीय विधि, न्याय प्रणाली, वर्ण व्यवस्था, अपराध और दंड, साक्ष्य प्रणाली।

मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति जो धर्मशास्त्र के नाम से प्रचलित है यह ईस्वी सन् के प्रारम्भ में लिखित भारतीय संस्कृति शिक्षा की आचार संहिता रही है, जिससे इस देश की सामाजिक चिन्तन धारा को दिशा मिला। यह ग्रन्थ न सिर्फ समाजशास्त्र, संस्कृत, कानून के ग्रन्थ रहे हैं अपितु अनेकों शैक्षिक उपबन्ध भी दिये गये हैं। इनसे पारम्परिक व्यवहारों को दिशा मिलती है।

दण्ड विधान (दण्ड का सिद्धान्त)-

न्याय व्यवस्था की योजना उसके द्वारा प्राप्त होने वाले उपचार के लिए ही प्रमुख रूप से होती है। अपराधी का शमन न्यायालयों की औपचारिक शक्ति के ही द्वारा होता है। स्मृति की न्याय व्यवस्था भी अपने इस आदर्श को ही दृष्टि में रखकर की गई है। मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति में विस्तार के साथ अपराध तथा उसके उपचार तथा दण्ड व्यवस्था का विवेचन किया गया है। उपचार के नियम (विधियाँ) बताने के पूर्व स्मृतियाँ उन विषयों को जिसके अन्तर्गत विवाद उत्पन्न हो सकता है, अठारह शीर्षकों में रखती है। व्यवहार के

अठारह पदों का तात्पर्य यह है कि सभी प्रकार का विवाद अठारह शीर्षकों में से किसी एक के ही अन्तर्गत रहेंगे। यही विधान औपचारिक कहा जायेगा। उपचार की अग्रयोजना उक्त अठारह प्रकार के पदों के अनुसार ही दी गई है। इन अठारह पदों में समस्त विवादों को रखना उन सभी कानून वेत्ताओं को स्वीकृत था जो प्राचीन भारत की न्याय पद्धति के आधार स्तम्भ कहे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए उक्त स्मृतिकारों के अतिरिक्त बृहस्पति, कौटिल्य आदि ने भी व्यवहार के अठारह पदों का उल्लेख किया है। मनु तथा नारद व्यवहार पदों को एक स्थान पर ही संग्रहीत करके उनका उपचार बतलाते हैं, परन्तु याज्ञवल्क्य ने व्यवहार पदों को एक स्थान पर नहीं गिनाया है, स्मृतियों के अनुसार विवाद के अठारह पद इस प्रकार हैं-

1. ऋणदान- इसमें ऋण के लेने देने से उत्पन्न होने वाले विवाद आते हैं।
2. निक्षेप- इसके अन्तर्गत अपनी वस्तु को दूसरे के पास धरोहर रखने से उत्पन्न विवाद आते हैं।
3. अस्वामी विक्रय-अधिकार न होते हुए दूसरे की वस्तु बेच देना।
4. संभूय समुत्थान- अनेकजन मिलकर साझे में व्यवसाय करना।
5. दत्तस्य अनपाकर्म-कोई वस्तु देकर फिर क्रोध आदि लोभ के कारण बदल जाना।
6. वेतन का न देना- किसी से कम लेकर उसका पारिश्रमिक न देना।
7. संविद् का व्यतिक्रम- कोई व्यवस्था किसी के साथ करके उसे पूरा न करना।
8. क्रय विक्रय का अनुशय-किसी वस्तु के खरीदने या बेचने के बाद में असंतोष होना।
9. स्वामी और पशुपालन का विवाद- चरवाहे की असावधानी से जानवरों की मृत्यु आदि के सम्बन्ध में।
10. ग्राम आदि के सीमा का विवाद- मकान आदि की सीमा का विवाद भी इसी में आता है।
11. वाक्-प्रारूप्य- गाली-गलौज करना।
12. दण्ड-प्रारूप-मारपीट।
13. स्तेय (चोरी)- यह कृत्य स्वामी से छिप कर होता है।
14. साहस डकैती- बलपूर्वक स्वामी की उपस्थिति में धन हरण।
15. स्त्री संग्रहण- स्त्रियों के साथ व्यभिचार अथवा बलात्कार।
16. स्त्री पुंभर्तृ- स्त्री और पुरुष (पति-पत्नी) के आपस में विवाद।
17. विभाग-दाय भाग- पैतृक आदि सम्पत्ति का विभाजन।
18. द्यूत और समाह्व- दोनों जुआ के अन्तर्गत आते हैं। प्राण रहित पदार्थों के द्वारा ताश, चौपड़, जुआ, द्यूत कहलाता है। प्राणियों के द्वारा तीतर, बटेर आदि का युद्ध, घुड़दौड़ आदि समाह्व कहलाता है।

मनु द्वारा निरूपित दण्ड व्यवस्था-

मनुष्य का विशृंखलित अहंकारी मन अपराध में एक प्रकार की मानसिक तृप्ति का अनुभव करता है। मानव की मानसिकता अनन्त विविधता से ओत-प्रोत है। मनोवैज्ञानिक आधार पर विकृत मानसिकता का अनुमान या अनुसंधान किया जाता है, किन्तु मनुष्य के अपराधी मन की गहराई नापने के लिए कोई मानदण्ड स्थापित नहीं हो पाया है। इसी के समानान्तर 'दण्ड' एक व्यवस्था है और उसकी सीमा या मात्रा भी निर्धारित है।

'दण्ड' शब्द का प्रयोग प्राचीन ग्रन्थों में विविध अर्थों में हुआ है। ऋग्वेद के एक मंत्र में शत्रुओं के दमन के अर्थ में दण्ड शब्द का प्रयोग हुआ है। इस मन्त्र का भाष्य लिखते सायणाचार्य कहते हैं- "दमः दमनम्।" बाधनमिच्छत् निरुक्तकार यास्क ने 'दण्ड' शब्द की उत्पत्ति धारणार्थक 'दद' धातु से मानी है। दण्ड द्वारा ही सभी प्रतिभाओं को धारण किया जाता है। यास्क के ही अनुसार "दम" धातु से भी दण्ड शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध होती है, जिसके द्वारा अपराधियों का दमन किया जाता है, उसे दण्ड कहते हैं अपनी इस व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में यास्क ने उपमन्यु के पुत्र औपमन्यव को भी उद्धृत किया है।

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में भी 'दण्ड' शब्द का प्रयोग धारण तथा दण्डन के अर्थ में हुआ है। गौतम धर्मसूत्र में दमन करने के कारण ही दण्डविधि को वश में किया जाता है। मनु के अनुसार प्राणियों की रक्षा के लिए सभी जीवों के रक्षक ब्रह्मतेजोभय दण्ड को ईश्वर ने अपने धर्मपुत्र में पैदा किया है। उनके अनुसार दण्ड ही प्रजा का शासन चलाता है। दण्ड ही रक्षा करता है।

स्मृतियों में नारीदूषण अपराध पर दण्ड व्यवस्था-

यह गम्भीर चिन्ता का विषय है कि आज का समाज नारी के प्रति अत्यधिक असंवेदनशील होता चला जा रहा है। प्राचीनकाल में जहाँ प्रायः राजन्य वर्ग में नारी के अपहरण की घटनायें घटित होती थीं, वही आज यह समाज में आम बात हो गई है- अपहरण, बलात्कार और फिर साक्ष्य को समाप्त करने की भावना से उसको मार देना- जैसे ही बच्चों का खेल है। ऐसा प्रतीत होता है कि सुनियोजित ढंग से प्रयास किया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर आज से बीस-पच्चीस वर्ष पहले नारी की जो स्थिति थी, उसमें सुरक्षा की दृष्टि से हास हुआ है। वह पहले जितनी सुरक्षित नहीं रही है। एक समय था जब बिना किसी भेद-भाव के गाँव की बेटों सबकी बेटों मानी जाती थी, जिस प्रकार कोई अपनी बेटों के घर का नहीं खाता-पीता था, उसी प्रकार वह गाँव की बेटों जिस गाँव में विवाह होकर पहुँचती थी, उस गाँव का अन्न, जल नहीं ग्रहण करता था। समय के साथ शिक्षा के बढ़ते प्रभाव में यह आदर्श लुप्त हो गया है। पाश्चात्य आदर्शों से ओत-प्रोत शिक्षा पद्धति ने हमको बहुत कुछ दिया है, परन्तु जो हमसे छीना है, उसकी क्षतिपूर्ति नहीं की जा सकती। आज यदि नारी को किसी से सबसे अधिक डर है, वह अपने कहे जाने वाले इन्हीं लोगों से है। आकड़े यह बताते हैं,

जितनी भी दुर्घटनाएँ नारी के साथ घटित होती हैं, अधिकांश में वे सब अपनों के द्वारा ही की जाती हैं। संविधान अपनी जगह है, उसके सदुद्देश्य पर संदेह नहीं किया जा सकता, परन्तु संविधान की रक्षा का दायित्व जिस वर्ग पर है, उसके द्वारा आज नारी प्रताड़ित की जा रही है। कानून का रक्षक ही कानून का सबसे बड़ा शत्रु है, यह कथन भारतीय परिस्थितियों का मूल्यांकन करने पर यथार्थ प्रतीत होता है। नारी के विषय में यह कथन और भी अधिक सटीक है। यदि कोई नारी अपने सतीत्व की रक्षा के लिए या सतीत्व पर आए संकट के प्रतीकार के लिए अथवा उसके साथ हुए अन्याय के समाधान के लिए किसी अधिकारी के पास जाती है, प्रायः वह भी उसकी शोषण करने वाला सिद्ध होता है। आज ऐसी विडम्बना भरी नैराश्यपूर्ण स्थिति में यह विचार मन में आता है कि प्राचीन काल के संविधान में क्या व्यवस्था थी? और वह नारी को किस रूप में देखती थी? एक ओर जहाँ नारी दूषण पुरुष के द्वारा किया जाता था वही दूसरी ओर स्वेच्छा से भी नारी मर्यादा का उल्लंघन करती हुई दिखाई देती है। स्मृतियों में इन दोनों की समस्याओं पर विचार किया गया है, प्राचीन काल में नारी की स्थिति और उसके महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए मनुस्मृति में महाराज मनु कहते हैं-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्त न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फलाः क्रियाः॥¹

जिस कुल में स्त्रियों की पूजा अर्थात् सम्मानपूर्वक सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, उस कुल पर देवता प्रसन्न होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती, उनको उचित सम्मान नहीं दिया जाता, उस कुल में सब कर्म निष्फल हो जाते हैं। इसलिए मनु का विचार है कि स्त्रियों का अनादर कभी नहीं करना चाहिए।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।

न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धन्ते तद्धि सर्वदा॥²

जिस कुल में जाति अर्थात् दूसरे कुल से आयी स्त्रियाँ किसी कारण से दुःखी रहती हैं, वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है और जिस कुल में नारी कभी दुःख नहीं पाती, वह कुल सदा फलता-फूलता रहता है। यदि वर्तमान सन्दर्भ में उक्त कथन की व्याख्या की जाए तो कहा जा सकता है कि जिस समाज में नारी को उचित सम्मान नहीं दिया जाता है और उसकी आवश्यकता की पूर्ति नहीं की जाती और जिसे जन्म लेने से पहले समाप्त करने का षडयंत्र किया जाता है, उस समाज के सब कर्म निष्फल हो जाते हैं। वह समाज, वह राष्ट्र कभी उन्नति के पथ पर आगे नहीं बढ़ सकता। जहाँ नारी को यथोचित सम्मान दिया जाता है, वह राष्ट्र सदा फलता-फूलता और सुखी रहता है। दाम्पत्य जीवन के आदर्श रूप का चित्रण करते हुए आचार्य मनु कहते हैं-

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्राभार्या तथैव च।

यस्मिन्नेतत्कुले नित्यं कल्याणं वै तत्र ध्रुवम्॥³

जिस कुल में पत्नी से पति और पति से पत्नी प्रसन्न रहती है, उस कुल में निश्चित रूप से कल्याण का वास है।

आचार्य दक्ष कहते हैं कि परस्पर ऐसा अनुराग स्वर्ग में भी दुर्लभ है। यदि एक अनुराग करता हो और दूसरा पक्ष विरक्त हो तो दाम्पत्य जीवन में उससे बड़ा और कोई दुःख नहीं है। यदि पत्नी अनुकूल रहने वाली है तो गृहस्थाश्रम से बढ़कर कोई आश्रम नहीं है, क्योंकि उस आश्रम में धर्म, अर्थ और काम तीनों की प्राप्ति हो जाती है। जहाँ एक ओर प्राचीनकाल का शास्त्राकार नारी को इतने ऊँचे स्थान पर प्रतिष्ठित करता है और स्त्री पुरुष में सामंजस्य को महत्त्व देता है। वही उस युग के समाज में भले ही नारी इतनी अधिक सुरक्षित और सम्मानित न हो, पर उसका दाम्पत्य जीवन आज की तुलना में अधिक सुखमय था। प्राचीनकाल में, विशेष रूप से स्मृतियों में, अपराध के लिए साहस शब्द का प्रयोग हुआ है। आचार्य बृहस्पति अपराध का वर्गीकरण करते हुए साहस को चार प्रकार के बताते हैं- (1) मनुष्य को मारना (2) चोरी करना (3) परस्त्री के साथ बलात्कार करना, (4) प्रारूष्य। इस प्रकार स्मृतिकारों ने स्त्री के साथ होने वाले दुर्व्यवहार को संज्ञान में लेते हुए उसे अपराधों के अन्तर्गत परिगणित किया है। यह रेखांकित करता है इस प्रकार की घटनाएँ इस रूप में न सही घटित अवश्य होती थी और स्मृतिकार उनको दूर करने के लिए सचेष्ट दिखाई देते हैं। वशिष्ठ स्मृति में जहाँ आततायियों की गणना की गई है, उसमें अग्नि लगाने, विषय देने वाले और धनादि का अपहरण करने वालों के साथ स्त्री के हरण करने वाले को भी आततायी कहा गया है-

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।

क्षेत्रतदारश्चैव षडेते ह्यातातायिनः॥

आचार्य मनु आततायी के विषय में कहते हैं-

गुरुं वा बालवृद्धं वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥

गुरु, बालक, वृद्ध अथवा बहुश्रुत ब्राह्मण भी यदि आततायी के रूप में आये तो बिना विचारे उसका वध कर देना चाहिए। इस प्रकार शास्त्रकार बलात्कारी के लिये स्पष्ट रूप से दण्ड की व्यवस्था करता है।

मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में दंड व्यवस्था की परिकल्पना-

1. मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में दंड के चार प्रकारों का उल्लेख है।
2. इन स्मृतियों में अपराध और दण्ड व्यवस्था का विस्तृत वर्णन है।
3. इन स्मृतियों में अठारह व्यवहारपदों के आधार पर दण्ड की व्यवस्था बताई गई है?
4. इन स्मृतियों में अपराधियों को सुधारने और समाज में अपराधों की पुनरावृत्ति न हो, इस बात का ध्यान रखा गया है।
5. इन स्मृतियों में न्यायोचित दण्ड की व्यवस्था की गई है। प्रस्तुत शोधपत्र में दण्ड व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार से स्पष्ट है कि दण्ड से ही धन

धान्य की रक्षा होती थी। दण्ड ही प्रजा का शासन एवं उसकी सुरक्षा करता था, इस कारण यह कहा जाता है कि सबके सो जाने पर भी दण्ड जागता रहता था और इस कारण विद्वान उसे राजा का धर्म मानते थे। दण्ड का अनुचित प्रयोग करने पर उसका सर्वनाश हो जाता था।

मनुस्मृति में कहा गया है कि दण्ड ही राजा है वही न्याय का प्रचारकर्ता और सबका शासनकर्ता है, इसलिए बुद्धिमान लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं। यदि राजा दण्ड को अच्छे प्रकार विचार से धारण करें तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो बिना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है।

मनु की दण्ड व्यवस्था अपराध का स्वरूप और प्रभाव अपराधी की शिक्षा, पद और समाज में उसके रुतबे पर निर्भर है। ज्ञान सम्पन्न लोगों को मनु ब्राह्मण का दर्जा देकर अधिक सम्मान देते हैं, जो विद्या, ज्ञान और संस्कार से दूसरा जन्म प्राप्त कर द्विज बन चुके हैं, वे अपने सदाचार से ही समाज में प्रतिष्ठा पाते हैं। अधिक सामर्थ्यवान व्यक्ति की जवाबदेही भी अधिक होती है, अतः यदि वे अपने उत्तरदायित्व को नहीं निभाते हैं तो वे अधिक कठोर दण्ड के भागी हैं।

हम एक बात फिर बताना चाहेंगे कि जन्म से ही कोई ब्राह्मण या द्विज नहीं होता, इसका सम्बन्ध शिक्षा प्राप्ति से है।

यदि, हम दण्ड व्यवस्था को हम फिर से अपना ले तो भ्रष्टाचार और बहुत से अपराधों पर लगाम लगेगी। आजकल की तरह अपराधी प्रवृत्ति के लोग राजनीति में प्रवेश नहीं कर सकेंगे और राजनीति दूषित होने से बच जायेगी।

दण्ड और अपराधी का सामाजिक स्तर-

मनुस्मृति में दण्ड और अपराधी से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण श्लोक इस प्रकार हैं-

पिताचार्यः सुहन्माता भार्यापुत्रः पुरोहितः।

नाऽदण्डयोनाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति॥

-मनुस्मृति 8/335

चाहे वह पिता, माता, गुरु, मित्र, पत्नी, पुत्र या पुरोहित ही क्यों न हो यदि वह अपराध करेंगे तो वह अवश्य दण्ड के भागीदार होंगे। अर्थात् जब न्यायासन पर बैठकर न्याय करें तब किसी का पक्षपात न करें, किन्तु यथायोग्य दण्ड दें।

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्रकृतो जनः।

तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धरणा॥

-मनुस्मृति 3/336

जिस अपराध में सामान्य जन को एक पैसा दण्ड दिया जाये वहाँ शासक वर्ग को एक हजार गुणा दण्ड देना चाहिए। दूसरे शब्दों में जो कानूनविद् हैं, प्रशासनिक अधिकारी हैं या न्यायपालिका में हैं वे अपराध करने पर

सामान्य नागरिक से एक हजार गुणा अधिक दण्ड के भागी हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती यहाँ अपनी ओर से कहते हैं कि शासन में काम करने वाले एक चपरासी को सजा में आम लोगों के लिए जो प्रावधान है, उससे 8 गुणा अधिक सजा मिलनी चाहिए और शेष पदाधिकारियों के लिए भी उनके पदों के अनुपात से जो प्रावधान आम लोगों के लिए हो उससे कई गुणा अधिक और सबसे बड़े पदाधिकारी के लिए यह एक हजार गुणा तक होना चाहिए क्योंकि जब तक सरकारी पदाधिकारियों को साधारण नागरिकों की तुलना में कठोर दण्ड का विधान नहीं होगा, तब तक शासन प्रजा का हनन ही करता रहेगा। जैसे एक सिंह को वश में करने के लिये बकरी की अपेक्षा अधिक कठोर नियंत्रण चाहिए उसी प्रकार प्रजा की सुरक्षा को निश्चित करने के लिए सरकारी कर्मचारियों पर अत्यन्त कठोर दण्ड आवश्यक है।

अष्टापद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम्।

षोडशैस्तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च॥

-मनुस्मृति 8/336

ब्राह्मणस्य चतुःषष्टि पूर्णं वापि शतं भवेत्।

द्विगुणा च चतुःषष्टिस्तदोषगुण विद्धि सः॥

-मनुस्मृति 8/337

यदि कोई अपनी स्वेच्छा से और अपने पूरे होशोहवास में चोरी करता है तो उसे एक सामान्य चोर से 8 गुणा सजा का प्रावधान होना चाहिए। यदि वह शूद्र है तो 8 गुणा और वैश्य है तो 16 गुणा तथा क्षत्रिय है तो 32 गुणा और यदि ब्राह्मण है तो उसे 64 गुणा या एक सौ अट्ठाईस (128) गुणा पाप लगता है चूँकि ब्राह्मण को चोरी के गुण-दोषों की जानकारी होती है। दूसरे शब्दों में दण्ड अपराध करने वाले की शिक्षा और सामाजिक स्तर के अनुपात में होना चाहिए।

वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाये तो प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, मुख्य न्यायाधीश, राष्ट्रीय दलों के नेता यदि दुराचरण करते हैं तो कठोरतम दण्ड के भागी हैं। इसके बाद मंत्रियों, सांसदों, विधायकों, राज्याधिकारियों और न्यायाधीशों की बारी है, जितने भी प्रशासनिक अधिकारी, नौकरशाह हैं यहाँ तक कि एक सरकारी विभाग के चपरासी तक को भी सामान्य नागरिक की तुलना में अधिक कठोर दण्ड मिलना चाहिए।

सामान्य नागरिकों में भी शिक्षित तथा प्रभावशाली वर्ग, यदि अपने कर्तव्य से मुँह मोड़ता है तो कठोर दण्ड के लायक है। जिस तरह समाज में सबसे श्रेष्ठ को सबसे अधिक महत्व प्राप्त है, इसीलिए उनके आदर्श च्युत होने से सारा समाज प्रभावित होता है।

निष्कर्ष-

मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति दोनों में दंड और न्याय व्यवस्था का विस्तृत वर्णन मिलता है। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति, दोनों ही प्राचीन भारतीय विधिशास्त्र की

महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं, जिनमें दंड व्यवस्था का विस्तृत वर्णन मिलता है। इन दोनों ग्रंथों में सामाजिक अनुशासन, नैतिक मूल्यों और राजधर्म की रक्षा हेतु दंड व्यवस्था को एक अनिवार्य साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

मनुस्मृति की दंड व्यवस्था अधिक धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण से प्रेरित है, जिसमें वर्ण व्यवस्था के अनुसार अपराधों की गंभीरता और दंड निर्धारित किए गए हैं। इसमें ब्राह्मणों को अपेक्षाकृत अधिक संरक्षण प्राप्त है, जिससे वर्ग आधारित भेदभाव की झलक मिलती है। वहीं याज्ञवल्क्य स्मृति अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक, संगठित और न्यायसंगत प्रतीत होती है। इसमें न्याय प्रक्रिया, प्रमाण, साक्ष्य और अपील जैसे विधिक प्रावधान अधिक स्पष्ट और व्यवस्थित रूप से वर्णित हैं।

दोनों स्मृतियाँ उस समय की सामाजिक संरचना और मूल्यों को प्रतिबिंबित करती हैं, किंतु याज्ञवल्क्य स्मृति में विधिक सोच की प्रगति और न्यायिक प्रणाली की अधिक परिपक्वता देखने को मिलती है। अतः यह कहा जा सकता है कि यद्यपि मनुस्मृति ने दंड व्यवस्था की आधारशिला रखी, याज्ञवल्क्य स्मृति ने उसे अधिक संगठित, न्यायसंगत और व्यावहारिक रूप प्रदान किया।

इस प्रकार, इन दोनों स्मृतियों का तुलनात्मक अध्ययन न केवल प्राचीन भारतीय विधिक प्रणाली को समझने में सहायक है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि समय के साथ-साथ भारतीय विधिशास्त्र में सुधार, व्यावहारिकता और न्याय की भावना का विकास हुआ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. मनुस्मृति-3/56
2. मनुस्मृति-3/57
3. वशिष्ठस्मृति-3/19
4. मनुस्मृति-8/349
5. मनुस्मृति-8/335
6. मनुस्मृति-8/336
7. मनुस्मृति-8/337
8. मनुस्मृति-8/338
9. मनुस्मृति हिन्दी अनुवाद, शिवराज आचार्य चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2017।
10. 20 स्मृतियाँ सम्पादक, पं० श्रीराम शर्मा आचार्य भाग- एक संस्कृत संस्थान वेदनगर, बरेली, 1993।
11. याज्ञवल्क्यस्मृति हिन्दी व्याख्या, गंगासागर राय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2017।
12. मनुस्मृति में राजतन्त्र, डॉ० कौशल किशोर मिश्रा, पृ० 42।
13. प्रमुख स्मृतिकारों का अध्ययन, डॉ० लक्ष्मीदत्त ठाकुर।

